स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत-२५३७ अंक-१६९, वर्ष-१५, अक्टूबर-२०११

भादों सुदि ३, मंगलवार, दि.५-९-७८, बहिनश्री के वचनामृत-२१५-२१६ पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, प्रवचन-८६

मुमुक्षु जीव शुभमें लगता है, परन्तु अपनी शोधक वृत्ति बह न जाय - अपने सत्स्वरूपकी शोध चलती रहे इस प्रकार लगता है। शुद्धताका ध्येय छोड़कर शुभका आग्रह नहीं रखता।

तथा वह `मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ' करके पर्यायकी अशुद्धताको भूल जाय - स्वच्छन्द हो जाय ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता, हृदयको भीगा हुआ रखता है।।२१५।।

`वचनामृत' यह आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा और कहा, त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ प्रभु, पूर्ण स्वरूप आनंद और पूर्ण ज्ञानघन, उसकी दृष्टि करनी, ऐसा कहा, तो सम्यग्दर्शन होगा। क्रियाकांड, दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम वह कोई धर्म नहीं। वह धर्म नहीं है और धर्म का कारण भी नहीं। कठिन बात, भाई ! अंतर में भगवान पूर्ण आनंद ध्रुवधाम, स्थान... आहा..हा..! उस पर दृष्टि देकर, ध्रुव को ध्येय बनाकर, दृष्टि में जो सम्यग्दर्शन होता है, त्रिकाली आनंद का अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। धर्म की पहली सीढ़ी (यह है)।

`**मुमुक्षु जीव शुभमें लगता है,...**' मुमुक्षुजीव में शुभभाव आता है। लेकिन उस शुभभाव में लक्ष्य-ज़ोर नहीं जोड़ना। `**परंतु अपनी शोधक वृत्ति बह न जाय**' आहा..हा..! मैं चैतन्य पूर्णानंद शुद्ध वस्तु हूँ, ऐसी शोधकवृत्ति न जाय और शुभभाव हो। समझ में आया ? श्रवण करने में, वांचन में, भक्ति में शुभभाव तो आता है, लेकिन मुमुक्षुजीव को शुभभाव होने पर भी, उसकी शोधकवृत्ति-शुद्ध की शोधकवृत्ति होती है। आहा..हा..! जगत को ऐसा कठिन काम, बापू !

`**शोधक वृत्ति बह न जाय-अपने सत्स्वरूप की शोध चलती रहे...**' आहा..हा..! अंतर भगवान पूर्ण अनंत शांति और आनंद का धाम, प्रभु ! मुमुक्षुजीव को सम्यग्दर्शन होने से पहले भी... आहा..हा..! शुभभाव आता है, फिर भी वहाँ शुद्ध की शोधक दृष्टि चलती है। आहा..हा..! ऐसा काम है। कठिन काम। एक तो संसार के काम से फुरसत न मिले। उसमें पांच-पचास लाख या करोड़-दो करोड़ मिले, तो मर गया वहाँ। हम पैसेवाले और हम लक्ष्मीवाले... अरे...! प्रभु ! क्या है लेकिन ? शुभराग है वह भी तेरी चीज नहीं। आहा..हा..!

शुभराग आता है, लेकिन धर्मीजीव होने की लायकातवाले मुमुक्षु की अंतर शुद्ध स्वभाव की शोधकवृत्ति न जाये। आहा..हा..! कोई भी प्रसंग हो। लेकिन उसको अंतर शुद्ध चैतन्य... आहा..हा..! पूर्णानंद का नाथ परमात्म

स्वरूप से बिराजमान आत्मा है। यह कैसे बैठे ? अंतर वस्तु भगवान परिपूर्ण स्वरूप आत्मा है। शुभभाव आने पर भी, मुमुक्षु की अंतर शुद्ध सत्ता की शोधकवृत्ति न जाये। आहा..हा..! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- शोधकवृत्ति अर्थात् ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- शोधकवृत्ति अर्थात् अंतर की ओर का वलण (झुकाव)। आहा..हा..! मार्ग, भाई ! अलौकिक मार्ग है, प्रभु ! सम्यग्दर्शन पाने से पहले भी, सम्यग्दर्शन होता है, वह तो त्रिकाली आनंद के नाथ का अनुभव और अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..! अभी धर्म की पहली सीढ़ी... चारित्र तो कोई अलग चीज है। आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं कि, मुमुक्षु इसे कहें, मोक्ष का अभिलाषी, उत्कंठित ऐसा जीव इसे कहें कि शुभभाव होने पर भी (उसकी स्वरूप की शोधक वृत्ति चली नहीं जाती)। दया, दान, व्रतादि, भक्ति आदि, प्रभु का नामस्मरण वह सब शुभभाव है, वह धर्म नहीं, वह धर्म का कारण भी नहीं। आहा..हा..! ऐसी बात।

मुमुक्षु :- अशुभ से बचा इतना तो धर्म हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री :- अशुभ (से बचना) उसे कहाँ है ? मिथ्यादृष्टि जाने के बाद अशुभ से बचने को शुभ आता है। अबी तो मिथ्यात्व अशुभ है वहाँ किससे बचे ? सूक्ष्म बात है, भाई ! वर्तमान में बहुत गड़बड़ हो गई है, भाई ! जिंदगी चली जा रही है। आहा..हा..!

यह भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद का सागर अंदर... आहा..हा..! उसकी शोधकवृत्ति मुमुक्षु को शुभराग के काल में भी... आहा..हा..! न जाये। आहा..हा..! अरे..रे..! यह क्या ? जगत को कहाँ फुरसत (है) ? सारा दिन सिर्फ पाप.. पाप... और पाप। यहाँ तो पुण्य के काल में शोधकवृत्ति (जाती नहीं), उसकी बात करते हैं। आहा..हा..! समझ में आया ?

भगवान चैतन्य शुद्ध सत्ता, परमसत्ता प्रभु की आत्मा की-उसे अशुभभाव के समय तो ठीक, वह तो पाप है, वहाँ तो प्रेम नहीं होना चाहिये, लेकिन शुभभाव में भी, उस काल में भी, उसका प्रेम नहीं (होता)। अंतर शोधकवृत्ति में जिसकी दृष्टि जाती है। आहा..हा..! ऐसी बातें अभी पकडनी कठिन (पड़े)। आहा..हा..!

`**अपने सत्स्वरूप की शोध चलती रहे...**' आहा..हा..! अंदर चैतन्य भगवान को शोधने... आहा..हा..! एक लड़का खो गया हो तो शोध कितनी करते हैं ? कहाँ गया ? कहाँ है ? आहा..हा..! वैसे भगवान आत्मा, राग के प्रेम में भगवान आत्मा अपने को भूल गया। आहा..हा..! अब मुमुक्षुपना जब अंदर होता है, तब शुभराग के काल में भी अंतर की शोधकवृत्ति न जाय। आहा..हा..! शुभभाव में तल्लीन न हो। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं। अनजाने लोगों को ऐसा लगे कि यह कैसा धर्म है ? ऐसा कभी सुना नहीं, भाई ! जैनधर्म कोई पक्ष नहीं, कोई संप्रदाय नहीं है, यह तो वस्तु का स्वरूप है। आहा..हा..! जिनस्वरूप भगवान आत्मा, त्रिकाल जिनस्वरूप, राग के काल में भी जिनस्वरूप की शोधकवृत्ति, वीतराग स्वभावी आत्मा की शोधकवृत्ति न जाय। आहा..हा..!

`**शुद्धता का ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता।**' आहा..हा..! मुमुक्षु है, लेकिन शुद्ध चैतन्य भगवान परिपूर्ण पवित्र, प्रभु ! उसका `**ध्येय छोड़कर शुभ का आग्रह नहीं रखता।**' कि शुभ आये तो मुझे हित होगा और शुभभाव से मेरे आत्मा का अनुभव, दर्शन होगा, ऐसा आग्रह नहीं रखता। आहा..हा..! `**तथा वह मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ करके पर्याय की अशुद्धता को भूल जाय-**' आहा..हा..! त्रिकाली शुद्ध हूँ। ऐसा होने पर भी पर्याय में अशुद्धता है, वह भूल न जाय।

`**स्वच्छंद हो जाय...**' आहा..हा..! समझ में आया ? आहा..हा..! ऐसा मार्ग है। ऐसे `**मैं शुद्ध हूँ, मैं शुद्ध हूँ, करके पर्याय की अशुद्धताको भूल जाय-स्वच्छंद हो जाय ऐसा नहीं करता।**' आहा..हा..! अशुद्धता है तो कहाँ है ? मुझ में कहाँ है ? ऐसे अशुद्धता करते है और पर्याय में अशुद्धता है, वह उसको है ही नहीं और स्वच्छंद हो जाये (ऐसा नहीं करता)। आहा..हा..!

मुमुक्षु :- स्वच्छंद माने क्या ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- स्वच्छंद नाम विकारी पर्याय मेरी नहीं है, ऐसा मानकर विकारी पर्याय का सेवन करे, वह स्वच्छंद है। आहा..हा..! स्वच्छंद का अर्थ तो स्वतंत्रता भी होता है। `समयसार' मैं है। वह अर्थ यहाँ नहीं।

यहाँ स्वच्छंद के अर्थ में, अपने स्वभाव को भूलकर और पर्याय में अशुद्धता है उसको लक्ष्य में न रखकर अशुद्धता कितनी भी हो उसका सेवन करे (ऐसा नहीं करता)। आहा..हा..!

ज्ञानी का भोग निर्जरा हेतु है, ऐसा कहा। तो वह ऐसा मान ले कि हमें भोग होता है... आहा..हा..! (उसमें) निर्जरा होती है। ऐसा नहीं, प्रभु ! आहा..हा..! विषय-वासना का भाव, भोग का भाव सिर्फ पाप है। यहाँ तो शुभभाव में होनेपर भी शुद्धता का ध्येय, शोधकपना न जाये। और शुद्ध का ध्येय करता है और पर्याय में अशुद्धता है ही नहीं, चाहे जितनी भी अशुद्धता हो मुझे क्या है? ऐसे स्वच्छंदी न हो जाय। आहा..हा..! ऐसा है, भाई !

`शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता,...` `श्रीमद्` में आता है न ? `कोई क्रियाजड़ थई रह्या` कोई राग की क्रिया में जड़ में, राग जड़ है, चैतन्य नहीं। `शुष्कज्ञानमां कोई...` सिर्फ ज्ञान के उघाड की बात करे और अंदर में स्वच्छंद का सेवन करे... आहा..हा..! वह निश्चयाभासी है। आहा..हा..! कैसे भी पाप के परिणाम आवे, उसकी जिसको दरकार नहीं... आहा..हा..! वह स्वच्छंदी है। स्वतंत्र नहीं। आहा..हा..! पाप हुआ तो हुआ, भोग हुआ तो हुआ, ऐसे बेदरकार न करे। आहा..हा..! समझ में आया ? यह तो भाई ! जन्म-मरण रहित होने की बात है। आहा..हा..! बाकी तो ठीक, सब करते हैं।

`स्वच्छंद हो जाय ऐसा नहीं करता; शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता,..` ज्ञान की बातें करना, लेकिन अंदर में राग की एक्ता ज़रा भी तोड़े नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? वह कहा न कि, `कोई क्रियाज़ड थई रह्या।` दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा सब राग है। `अने शुष्कज्ञानमां कोई` किसी बात में चढ़ गये। शास्त्र का अभ्यास करके, बातों में आ गये। ऐसा है, वैसा है। पाप के परिणाम कितने तीव्र आते हैं उसकी दरकार नहीं। आहा..हा..! वह तो शुष्कज्ञानी है। कोरा ज्ञानी-यथार्थ ज्ञानी नहीं। आहा..हा..! `करुणा ऊपजे जोई` ऐसा उसमें आता है न ?

`कोई क्रियाजड़ थई रह्या, शुष्कज्ञानमां कोई, माने मार्ग मोक्षनो।` आहा..हा..! हम भी मोक्ष के मार्ग में हैं। अरे..! प्रभु ! आहा..हा..! पर से उदासीनता आई नहीं। आहा..हा..! और स्वच्छंद से, मुझे एक लड़का हुआ बहुत आनंद-आनंद (है)। यह लड़का कमाई करनेवाला हुआ तो आनंद-आनंद (हो जाये), क्या है यह स्वच्छंदता ? मेरा क्या है उसमें ? मैं तो शुद्ध हूँ न !

मुमुक्षु :- कमानेवाला बेटा हो तो खुश न हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री :- किसका कमानेवाला बेटा ? ये `भाई` कमानेवाले हुए। छह हजार, आठ हजार का पगार। वह बात करते हैं। किसका बेटा ? आहा..हा..! शुभराग भी अपना नहीं, वहाँ अशुभराग में जुड़कर मुझे आनंद आता है। मैं तो शुद्ध हूँ। मैं कहाँ अशुद्ध में आया ? आहा..हा..! भाई ! अशुद्ध का सेवन करके नरक में जायेगा, बापू ! तिर्यंच में अवतार होगा। आहा..हा..! वहाँ कुदरत के नियम से विरुद्ध करेगा तो कुदरत नहीं छोड़ेगी। कठिन काम बहुत, भाई ! आहा..हा..!

`हृदय को भीगा हुआ रखता है।` देखो ! देखा ? हृदय शुष्कज्ञानी नहीं हो जाता। भीगा हुआ, उदासीनता रखता है। आहा..हा..! २१५ बोल (पूरा) हुआ। मुमुक्षु की दशा की योग्यता यह कही। आहा..हा..!

जो वास्तवमें संसारसे थक गया है उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। वस्तुकी महिमा बराबर ख्यालमें आ जाने पर वह संसारसे इतना अधिक थक जाता है कि `मुझे कुछ बी नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये` ऐसी दृढ़ता करके बस `द्रव्य सो ही मैं हूँ` ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।

दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती। शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती कि `मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं।` उसे-द्रव्यदृष्टिवान जीवको-खबर

है कि अनंत कालमें अनंत जीवोंने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर अनंत विभूति प्रगट की है। द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्यमें जो-जो हो वह प्रगट होता ही है; तथापि `मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है। वह तो प्रारम्भसे पूर्णता तक, सबको निकालकर, द्रव्य पर ही जमी रहती है। किसी भी प्रकारकी आशा बिना बिलकुल निस्पृहभावसे ही दृष्टि प्रगट होती है।।२१६।।

२१६। भाई ! यह तो सर्वज्ञ परमात्मा ने कहे पंथ की बात है। यह कोई कथा-वार्ता नहीं। भगवत्स्वरूप प्रभु ! उसको सम्यग्दर्शन में पाने की क्या रीत है, वह बात है।

मुमुक्षु :- ...

पूज्य गुरुदेवश्री :- भगवत्स्वरूप है, (लेकिन) प्रतीत में कहाँ आया है ? भगवत्स्वरूप है वह तो ख्याल में, भाषा में आया। आहा..हा..! भगवत्स्वरूप परमात्मा, उसकी हयाती प्रतीत में, ज्ञान में आती है, उसको भगवत्स्वरूप है। जिसको ज्ञान में राग और पर्याय भासित होती है, उसको अंदर भगवत्स्वरूप कहाँ है ? है तो है, लेकिन उसकी प्रतीत में कहाँ आया है ? समझ में आया ? सुबह में आयेगा न ? आहा..हा..!

आत्मा की ज्ञान पर्याय में... आहा..हा..! भगवान पूर्णानंद स्वरूप का ज्ञान, अज्ञानी को भी होता है। आहा..हा..! क्या कहते हैं ? अज्ञानी की ज्ञान की पर्याय में भी बाल-गोपाल, बालक से वृद्ध हो, स्त्री हो, पुरुष हो, नपुसंक हो... आहा..हा..! उसका आत्मा... आहा..हा..! उसकी ज्ञानकी पर्याय में पर्याय का स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से पर्याय में भगवान ही भासता है। भगवान का ही ज्ञान पर्याय में होता है। आहा..हा..! लेकिन अज्ञानी राग और बंध के वश होकर, परद्रव्य के वश होकर, पर्याय में स्वद्रव्य भासता है, उसकी बेदरकारी करता है। आहा..हा..! समझ में आया ? क्योंकि, ज्ञान की पर्याय जो है, उस पर्याय का स्वभाव तो स्वपरप्रकाशक है। तो स्वप्रकाशक ज्ञान की पर्याय में सारा भगवान पूर्णानंद, उसका पर्याय में ज्ञान होता है। आहा..हा..! अज्ञानी की पर्याय में भी स्वद्रव्य का ज्ञान तो होता ही है। लेकिन राग और बंध के वश दृष्टि होने से, अबंध भगवान पर्याय में जानने में आने पर भी, वह जानता नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? क्या कहा ? आयेगा कल, परसों।

`जो वास्तव में संसार से थक गया है उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।' आहा..हा..! पर्याय में भगवान पूर्णानंद भासता है, फिर भी उसकी दृष्टि पर्याय और राग पर होने से, उसको भासित होनेपर भी उसे नहीं भासित हो गया। आहा..हा..! समझ में आया ? दृष्टि में सिर्फ परप्रकाशक रह गया। परप्रकाश में स्वप्रकाशक जानने में आया वह रहा नहीं। आहा..हा..! पर्याय को और शुभ-अशुभराग को जानने में स्वपरप्रकाशक न आया। स्वप्रकाशक न आया, अकेला परप्रकाश आया। जानते हैं, पर्याय स्व और परप्रकाशक ऐसा पर्याय के स्वभाव में है। आहा..हा..! फिर भी स्व की ओर का लक्ष्य नहीं, उस कारण से अकेली परप्रकाशक पर्याय में अपने को मानता है। आहा..हा..! वह मिथ्यात्व है। आहा..हा..! गजब बात है। ऐसी बात !

दिगम्बर संत, केवलज्ञानी के केडायत है, प्रभु ! वे सर्वज्ञ के केडायत हैं। सर्वज्ञपना अल्पकाल में पानेवाले हैं। आहा..हा..! सर्वज्ञ की वाणी अनुसार अंतर में अनुभव हुआ, तो वह जगत को जाहिर करते हैं। आहा..हा..! कि अपनी पर्याय में तेरी चीज तो जानने में आती है, लेकिन तेरा लक्ष्य राग और पर्याय पर होने से, परद्रव्य पर तेरा लक्ष्य होने से, स्वद्रव्य तेरे ज्ञान में जानने में आता है, फिर भी जाना नहीं। आहा..हा..! ऐसी बातें। इसके बजाय दया पालना, व्रत करना, णमो अरिहंताणं, इच्छामि पडिकमणा... ... तस्स मिच्छामि दुक्कडमं.. (आसान था)। एक जगह से दूसरी जगह जीव को रखा हो तो मिच्छामि दुक्कडम। वहाँ कहाँ धर्म आया ? आहा..हा..! श्वेताम्बर में आता है न ? ... करणामी। मिथ्यात्व आदि

सब से रहित होकर मैं काउसग्ग करता हूँ। आहा..हा..! लेकिन मिथ्यात्व क्या ? उससे रहितपना क्या है ? वह मालूम नहीं। समझ में आया ? और लोगस्स में ऐसा बोले कि `सिद्धासिद्धि मम दिसंतु।' हे सिद्धभगवान ! मुझे सिद्धपना दिखाईए। आहा..हा..! क्या है यह ? आहा..हा..! तुमने सब किया था कि नहीं ? किया था। आहा..हा..! हमने भी सब दुकान पर किया था। शाम को प्रतिक्रमण करते थे। सवंत्सरी आती है न ? स्थानकवासी के पर्युषण। अपवास करते थे। आठ दिन में चार चोविहारे उपवास करते थे। पानी नहीं, पानी की बुंद नहीं (लेते थे)। चोवीहार। और शाम को प्रतिक्रमण। सामायिक करके मैं प्रतिक्रमण करवाता था। (संवत) १९६५-६६ की बात है। लेकिन कुछ भान नहीं। यह क्रिया धर्म है, मैंने धर्म किया, यह प्रतिक्रमण किया। आहा..हा..! बादमें कुछ गाना बोले `जुओ जुओ रे जैनो केवा व्रतधारी' व्रतधारी। `जंबुस्वामी' का ऐसा भजन आता है। दुकान पर निवृत्ति थी। कुछ भान नहीं। आहा..हा..! अरे..! प्रभु ! कौन है और यह बोलते हैं वह भाषा किसकी है ? और विकल्प आये वह क्या चीज है ? आहा..हा..!

यहाँ कहते हैं, `**संसार से थक गया है...**' आहा..हा..! चौरासी लाख योनी में अवतार करके प्रभु तेरा अनंतकाल गया। आहा..हा..! फिर भी तुझे थकान नहीं लगी। आहा..हा..! तिर्यंच के भव, निगोद के भव, एक श्वास में निगोद के अठारह भव। आहा..हा..! वह कैसे भव होंगे ? आहा..हा..! उसे राग का, भव का कितना प्रेम होगा ! आहा..हा..! स्त्री होती है न। आठ-दस जात की साड़ी रखे। आठ-दस जाति की। रसोईघर में अलग साड़ी, जंगल जाये तो अलग साड़ी, कोई मर गया हो वहाँ जाने के लिये दूसरी साड़ी। कपड़े बहुत बदले। छोटी उम्र में सब देखा है। बदलते ही रहे। `भावनगर' के बड़े दरबार के पास बहुत जूते थे। मर गये तब तीन हजार जूते निकले। अलग-अलग, बैठने के लिये, सोने के लिये सब अलग-अलग। फेरफार... फेरफार... कपड़े भी बदलते रहे। वैसे अनादि से अज्ञानी भव को घूमाता रहता है। आहा..हा..! अर..र..! अब तुझे थकान लगी हो तो... आहा..हा..! तुझे थकान लगी हो तो, कहते हैं। आहा..हा..!

`**उसीको सम्यग्दर्शन प्रगट होता है।**' बाहर से समेटकर अंदर में जाना। आहा..हा..! भगवान पूर्णानंद का नाथ जहाँ बिराजते हैं, वहाँ दृष्टि ले जाना और उसका अनुभव करना। आहा..हा..! तब संसार की थकान उतर जायेगी। भव का अंत आयेगा। आहा..हा..! समझ में आया ? उसके सिवा चाहे दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव किये, वह सब संसार है। आहा..हा..! समझ में आया ?

`**वस्तु की महिमा बराबर ख्याल में आ जाने पर वह संसार से इतना अधिक थक जाता है...**' आहा..हा..! भगवान आत्मा अनंत अपरिमित शक्ति का-गुण का भंडार, स्वभाव का भगवान भंडार, अपरिमित स्वभाव, बापू ! आहा..हा..! पर्याय में इसकी जिसको महिमा आती है... आहा..हा..! भगवान अंदर नीचे तल में कितनी शक्ति रखता है ! ध्रुव में अनंत अपरिमित शक्ति है। आहा..हा..! और वह भी नित्य। आहा..हा..!

`**संसार से इतना अधिक थक जाता है कि `मुझे कुछ भी नहीं चाहिये,'...**' आहा..हा..! मेरे भगवान पूर्णानंद के नाथ के सिवा मुझे कुछ नहीं चाहिये। आहा..हा..! दुनिया प्रशंसा करे, निंदा करे वह तो जगत की चीज है। मुझे क्या ? आहा..हा..! समझ में आया ? `**इतना अधिक थक जाता है कि `मुझे कुछ भी नहीं चाहिये, एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये...**'' आहा..हा..! भगवान आत्मा पूर्णानंद स्वरूप जो द्रव्य स्वभाव, वह एक ही चाहिये। वस्तु त्रिकाली ज्ञायकभाव, अनंतगुण का सागर प्रभु ! आहा..हा..! वह एक ही चाहिये।

`**ऐसी दृढ़ता करके...**' `**एक निज आत्मद्रव्य ही चाहिये ऐसी दृढ़ता करके बस `द्रव्य सो ही मैं हूँ।**' आहा..हा..! परवस्तु तो मैं नहीं, दया-दान का विकल्प भी मैं नहीं, एक पर्याय भी मैं नहीं... आहा..हा..! वैसे एक गुणरूप भी नहीं। अनंत गुण का सागर एक द्रव्य भगवान... आहा..हा..! `**सो ही मैं हूं। ऐसे भावरूप परिणमित हो जाता है,...**' ऐसे पर्याय में निर्मल सम्यग्दर्शन की पर्यायरूप परिणमित हो जाता है। आहा..हा..! समझ

में आया ?

`**ऐसे भावरूप...**' मैं शुद्ध द्रव्य एकरूप हूँ, वही मुझे चाहिये, ऐसी दृढ़ता करके `**भावरूप परिणमित हो जाता है, अन्य सब निकाल देता है।**' आहा..हा..! चाहे तो शुभराग हो, उसको भी छोड़ देता है। वह मुझे नहीं चाहिये। एक समय की पर्याय में क्षयोपशम ज्ञान हो, वह भी मुझे नहीं चाहिये। मुझे तो पूर्ण ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव एक ही चाहिये। `**अन्य सब निकाल देता है।**' पर्याय भी अपना आश्रय छोड़ देती है। पर्याय का आश्रय छोड़ देते हैं, राग का आश्रय छोड़ देते हैं। सिर्फ त्रिकाल ज्ञायकभाव आहा..हा..! तब उसको सम्यग्दर्शन होता है। आहा..हा..!

यहाँ तो भगवान की भक्ति करो, स्मरण करो, जाप करो, भगवान का ध्यान करो, तुमको आत्मा प्राप्त हो जायेगा। अरे..! भाई ! उस विकल्प में कहाँ आत्मा है ? विकल्प में तो अनात्मा है। आहा..हा..! विकल्प से पार भगवान निर्विकल्प चीज, उसकी प्राप्ति में तो उस ओर की दृष्टि हो और राग और पर्यायबुद्धि छूट जाये। आहा..हा..! शास्त्र की पूजा करने से मेरा कल्याण होगा ऐसी दृष्टि छूट जाये। शास्त्र की पूजा करना वह भी एक शुभभाव राग है। आहा..हा..! जिसने यह वाणी पूज्य कही है, दूसरे श्लोक में, लेकिन वह व्यवहार से पूज्य है। आहा..हा..! समझ में आया ? शास्त्र देखे, पन्ना पड़ा हो, जय भगवान। भगवान की प्रतिमा तो शास्त्र से भी विशेष है। उसमें तो प्रतिबिंब में शांत.. शांत... शांत.. आहा..हा..! दिखती है। वीतराग... हलचल नहीं, स्थिरबिंब दिखे। आहा..हा..! फिर भी वह शुभभाव है। समझ में आया ? उसे निकाल देते हैं। दृष्टि में वह मेरा नहीं (ऐसे निकाल देता है)। आहा..हा..!

`**दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती।**' आहा..हा..! क्या कहते हैं ? सम्यग्दृष्टि जो दृष्टि है, वह निमित्त को स्वीकार नहीं करती, राग को स्वीकार नहीं करती, पर्याय को स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! `**भेद को स्वीकार नहीं करती।**' गुण-गुणी का भेद भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। आहा..हा..! भगवान पूर्णानंद का नाथ अभेद वस्तु, दृष्टि उस अभेद को स्वीकार करती है। आहा..हा..! तो शुभराग आता है उसका स्वीकार करे और उससे लाभ होगा, वह मिथ्यादर्शन है। आहा..हा..! ऐसी बातें हैं, भाई ! आहा..हा..! वर्तमान में तो देखो न ! हार्टफेईल। क्या कहते हैं ? हृदय का रोग। कितनों को सुनते हैं। युवान को हृदय का रोग है। लेकिन हृदय का रोग तुझे हुआ है ? राग के प्रेम में तेरा हार्टफेईल हो गया है। आहा..हा..!

`**दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती।**' आहा..हा..! `**शाश्वत द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती...**' आहा..हा..! त्रिकाली वस्तु सामान्य पर दृष्टि (हुई), वह दृष्टि ऐसे स्वीकार नहीं करती कि `**मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं।**' आहा..हा..! क्योंकि सम्यग्दर्शन और केवलज्ञान तो पर्याय है। आहा..हा..! ऐसी बात है, प्रभु ! कठिन पड़े इसलिये लोग `सोनगढ़' के नाम पर बेचारे विरोध करते हैं। अरे..! प्रभु ! क्या करता है ? भाई ! तुम्हारे स्वरूप की प्राप्ति की बात है न। तू किसका विरोध करता है ? भाई ! आहा..हा..! यह सब व्यवहार से होता है, व्यवहार से होता है। ऐसा तो कहते नहीं उसका तो लोप कर देते हैं। यहाँ तो भेददृष्टि का भी स्वीकार नहीं। आहा..हा..! दया, दान, व्रत, तप व्यवहार क्रिया की तो क्या बात करना ? लेकिन गुण-गुणी का भेद भी दृष्टि का विषय नहीं। आहा..हा..! ऐसा है, प्रभु !

जिसके ध्येय में, दृष्टि में तो सिर्फ अभेद द्रव्य दिखता है। दिखता है अर्थात् श्रद्धान होता है, प्रतीत में आता है और जानने में आता है। आहा..हा..! शास्त्र का दृष्टांत दे कि देखो ! उसमें ऐसा कहा है न ? उसमें ऐसा कहा है। `पंचास्तिकाय' में भिन्न साध्य-साधन कहा है न। भगवान ! वह किस अपेक्षा से कहा है ? भाई ! वह तो निमित्त कैसा था उसका ज्ञान करवाया है। लेकिन उससे कोई निश्चय होता है, ऐसा है नहीं। अरे..रे..! शास्त्र के अर्थमें से अपनी दृष्टि को पोषण मिले ऐसा अर्थ करे, लेकिन वस्तुदृष्टि का पोषण कैसे हो, वह मालूम नहीं। अरे..रे..!

`**दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती।**' आहा..हा..! `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' आता है कि नहीं ? `सोगानी'! मिला है न ? `द्रव्यदृष्टि प्रकाश' मिला है न ? भाई ! समझ में आया ? आहा..हा..! उससे भी यह पुस्तक अलौकिक है। सम्यग्दृष्टि `**दृष्टि एक भी भेद को स्वीकार नहीं करती।**' राग नहीं, निमित्त भगवान है उसका तो अपने में स्वीकार नहीं, वह तो पर में है। राग भी अपने में नहीं, वह तो परद्रव्य है। अरे..! निश्चय से तो पर्याय भी परद्रव्य है। आहा..हा..! वैसे दृष्टि द्रव्य का स्वीकार करने में, पर्याय भी परद्रव्य है (ऐसा मानती है)। पर्याय भेद है न, त्रिकाली द्रव्य का भेद है। आहा..हा..! फिर भी उसके लक्ष्य में, पर्याय है, अशुद्धता है, वह लक्ष्य तो होना चाहिये। आहा..हा..! वह `समयसार' की १४ वीं गाथा में आया है। आहा..हा..! भूल जाये कि पर्याय में अशुद्धता है ही नहीं तो टालना किसको ? आत्मा का आश्रय लेकर अस्थिरता टले वह कहाँ रहा ? नहीं है तो टालना कहाँ रहा ? आहा..हा..!

`**द्रव्य पर स्थिर हुई दृष्टि यह देखने नहीं बैठती...**' आहा..हा..! `**कि मुझे सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं।**' वह तो पर्याय है। दृष्टि के विषय में सम्यग्दर्शन की पर्याय भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं। आहा..हा..! निर्विकल्प सम्यग्दर्शन उसका विषय नहीं। आहा..हा..! तो उसका विषय शास्त्र, प्रतिमा और मंदिर (हो ऐसा कैसे हो सकता है ?) आहा..हा..! `आफ्रिका'वाले पन्द्रह लाख का मंदिर बना रहे हैं न ? `नाईरोबी'। दो हजार साल में नया बन रहा है। परदेश में यह पहला मंदिर है। वहाँ मुमुक्षु के सांठ घर हैं। सात-आठ घर तो करोडपति हैं। दूसरे तो १५-२०-२५ लाखवाले बहुत हैं। सब श्वेतांबर के लक्ष्य में आया है कि मार्ग तो यह है। समझ में आया ? क्या होगा ? कैसे होगा ? `जे जे देखी वीतरागने, ते ते होसी वीरा' आहा..हा..! `अनहोनी कबहु न होसे, काहेत होत अधीरा।' आहा..हा..! उसकी भी दृष्टि कहाँ है ? आहा..हा..! द्रव्य पर दृष्टि होनी चाहिये। आहा..हा..! पर्याय होगी.. होगी उस पर भी दृष्टि नहीं, ऐसा कहते हैं। और पर्याय हुई उस पर भी दृष्टि नहीं हुई। सम्यग्दर्शन हुआ और केवलज्ञान तो हुआ नहीं।

`**सम्यग्दर्शन या केवलज्ञान हुआ या नहीं। उसे द्रव्यदृष्टिवान जीवको-खबर है कि अनंतकाल में अनंत जीवों ने इस प्रकार द्रव्य पर दृष्टि जमाकर...**' वस्तु पर दृष्टि जमाकर... आहा..हा..! `**अनंत विभूति प्रगट की है।**' आहा..हा..! अंदर में अनंत-अनंत संपदा... आनंद, ज्ञान और शांति की संपदा अनंत पड़ी है, द्रव्यदृष्टि लगाकर संपदा की विभूति पर्याय में प्रगट की है। आहा..हा..! यह विभूति है। ये पैसे-बैसे धूल है। वह तो स्मशान की हड्डी की फासफूस है। आहा..हा..! समझ में आया ?

मुमुक्षु :- पूरी दुनिया पैसे के पीछे पागल है।

पूज्य गुरुदेवश्री :- पागल है, सारी दुनिया पागल है। दस हजार, पंद्रह हजार, बीस हजार का पगार हुआ तो... आहा..हा..! क्या है लेकिन ? `पैसो मारो परमेश्वरने हुं पैसानो दास' मिथ्यादृष्टि है। आहा..हा..! यहाँ तो पर्याय में सम्यग्दर्शन प्रगट हुआ, उसको भी दृष्टि स्वीकार नहीं करती। उसकी दृष्टि का ज़ोर तो त्रिकाली ज्ञायक पर है। आहा..हा..! ऐसी बात है।

`**अनंतकाल में अनंत जीवोंने...**' `**द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्य में जो-जो हो...**' द्रव्य नाम वस्तु जो अखंड-अभेद (है), ऐसी दृष्टि होने से, उस अभेद में जो है, वह प्रगट होता है। है उसमें से, सत्यमें से सत्य आता है। आहा..हा..! निर्मल सम्यग्दर्शन, निर्मल ज्ञान, निर्मल शांति, निर्मल आनंद, ऐसी विभुति वस्तु में है, तो उसका अनुभव प्रतीत करने से सम्यग्दर्शन में वह विभुति (प्रगट) हो जाती है। आहा..हा..!

`**द्रव्य में जो-जो हो वह प्रगट होता ही है;...**' होता ही है। ऐसी बातें, भाई ! यह तो जिसको जन्म-मरण रहित होना है, उसकी बात है। बाकी बाहर में राजी-राजी (होना हो, उसके लिये नहीं है)। आहा..हा..! `प्रवचनसार' `अमृतचंद्राचार्य' में तो वहाँ तक आता है कि हमें क्षयोपशमज्ञान की भी जरूरत नहीं है। हमें तो भगवान है वहाँ जाना, लीन होना, यह एक ही बात है। आहा..हा..! क्षयोपशम से भी बस हो, अलम। समझ में आया ?

`**द्रव्यदृष्टि होने पर द्रव्य में जो-जो हो वह प्रगट**

होता ही है; तथापि `मुझे सम्यग्दर्शन हुआ, मुझे अनुभूति हुई' इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है।' पर्याय में चौंटती नहीं। आहा..हा..! समझ में आया ? दृष्टि तो भगवान पूर्णानंद प्रभु पर पड़ी है, वह पर्याय प्रगट हुई उसमें चिपकती नहीं, अटकती नहीं, रुकती नहीं। आहा..हा..! सम्यग्दर्शन का विषय, अभेद पूर्णानंद का नाथ दृष्टि के विषयमें से हटता नहीं। आहा..हा..! मध्यस्थी जो बराबर सुने तो उसको ख्याल आये कि वस्तु तो यह है, सत्य तो यह है। आहा..हा..! भले उसे एकांत लगे और कठिन लगे। अनंतकाल में किया नहीं न, भाई ! अनंतकाल से किया नहीं। आहा..हा..! द्रव्य पर दृष्टि देना, यह चीज क्या है ? दृष्टि क्या और द्रव्य पर देना (क्या) ? आहा..हा..! और दृष्टि प्रगट हुई फिर भी दृष्टि उस पर जोर नहीं देती कि मुझे सम्यग्दर्शन तो हुआ। आहा..हा..! तो लौकिक शास्त्रज्ञान हुआ उसकी तो बात कहाँ है ? शास्त्र के अभ्यास का अभिमान, मुझे ज्ञान हुआ... आहा..हा..! समझ में आया ?

`**इस प्रकार दृष्टि पर्याय में चिपकती नहीं है।**' आहा..हा..! `**यह तो प्रारम्भ से पूर्णता तक,...**' सम्यग्दर्शन और दृष्टि `**यह तो प्रारम्भ से पूर्णता तक, सबको निकाल कर,..**' आहा..हा..! `**द्रव्य पर ही जमी रहती है।**' समझ में आया ? आहा..हा..! द्रव्य अर्थात् वस्तु त्रिकाली ज्ञायक प्रभु ! अनंत-अनंत संपदा का घर, महल, उसमें जहाँ दृष्टि गई... आहा..हा..! वह शुरूआत से आखिर तक वहीं जमी रहती है। आहा..हा..! `**किसी भी प्रकार की आशा बिना...**' आहा..हा..! मुझे लोग जाने, मुझे जानेकी इसे सम्यग्दर्शन हुआ है, ये सब आशाएं... आहा..हा..! समझ में आया ? ढिंढ़ौरा पीटना कि मैंने इतना प्राप्त किया। दृष्टि के विषयवाले को ऐसी चीज होती नहीं। आहा..हा..! `**किसी भी प्रकार की आशा बिना...**' दुनिया मानें, दुनिया मुझे पहिचाने, दूसरे से बेहतर मैंने धर्म प्राप्त किया है ऐसा जाने... आहा..हा..! ऐसी किसी भी प्रकार की आशा बिना, `**बिलकुल निस्पृहभाव से ही दृष्टि प्रगट होती है।**' त्रिकाली वस्तु की दृष्टि निस्पृहभाव से प्रगट होती है, पर की कोई आशा बिना। आहा..हा..! २१६ बोल (पूरा) हुआ।

करुणासागर पूज्य भाईश्री `शशीभाई' की ७९वीं जन्म-जयंती प्रसंग पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ७९वाँ जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. २९-११-११ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. ३-१२-११ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. २-१२-२०११ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा।

इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु ट्रस्ट के कार्यालय में यहाँ पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चोक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

संपर्क : श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४००१.

श्री परमागमसार, वचनामृत-१२९ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, प्रवचन नं.३७ (दि.८-१२-१९८२, भावनगर)

अरे भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं। तुम्हारे अन्तर में परमात्मा विराजते हैं, इससे अधिक धनाढ्यपन अन्य क्या हो सकता है ? ऐसे अपने परमात्मस्वरूपकी बात सुनते हीतुझे अन्तरसे उल्लास उछलना चाहिए, इसकी लगन लगनी चाहिए, इसके पीछे पागल हो जाना चाहिए - ऐसे परमात्मस्वरूपकी धून लगनी चाहिए। सच्ची धून लगे तो, जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ? अवश्य ही प्रगट हो। १२९।

१२९। `**अरे भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं।**' भाई। तेरे जैसा धनाढ्य कोई नहीं है। तू पामर... पामर.. पामर.. करता है मेरे पास कहाँ पैसे हैं ? पैसेवाले को देखकर तुझे लगता है कि अरेरे..! वे ऊँचे और मैं नीचा। परन्तु भगवान कहते हैं कि, `**तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं।**' ऐसी जो लघुताग्रंथी है उसे छोड़। ऐसा कहते हैं। Inferiority of complex कहते हैं। अरे ! मैं तो बिलकुल साधारण.. अरे..! मैं तो बिलकुल मामूली। ऐसी लघुताग्रंथी तो बाधारूप है। तेरे स्वरूप का दर्शन करने में वह अंतराय है। ऐसी लघुताग्रंथी का सेवन ठीक नहीं है, ऐसा कहते हैं।

`**भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं। तुम्हारे अंतर में परमात्मा बिराजते हैं, इससे अधिक धनाढ्यपन अन्य क्या हो सकता है ?**' अनन्त दिव्यगुणों की संपत्ति से संपन्न तू है। तेरी जो गुणसम्पति है इसके आगे बाहरी धन के ढेर-मिट्टी के ढेर देखे जाते हैं। `गुरुदेवश्री' का बहुत प्रचण्ड नाद था वह। बहुत से श्रीमंत लोग व्याख्यान में आते थे। भावनगर के महाराज आये थे। नजदीक बुलाकर फटकारते थे। तारीफ करते हुए तो कभी नहीं देखा। एकदम स्पष्ट कहते थे, यहाँ हमारे पास कहाँ मक्खनबाज़ी करने की बात है। और नाहीं हमें कोई चंदा इकट्ठा करना है कि भाई ! इतना लिखाना। ऐसी बात तो हमारे पास है नहीं।

मुमुक्षु :- भिखारी कहते थे।

पूज्य भाईश्री :- भिखारी कहते थे। ये धूल-मिट्टी है ऐसा कहते थे। ये धूल-मिट्टी है और आप ऐसी धूल के मांगनेवाले भिखारी हैं ऐसा कहते थे। फिर किसी एक शेठ का नाम संबोधन करके कहते थे भाई ! ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- ज्यादा माँगे वह बड़ा भिखारी, थोड़ा माँगे वह छोटा भिखारी।

पूज्य भाईश्री :- ऐसी सिंहवृत्ति होती है। साधकों को सिंहवृत्ति होती है। इसमें भी `गुरुदेवश्री' तो तीर्थंकरद्रव्य थे। तीर्थंकर प्रकृति अभी यहाँ नहीं बाँधी थी या नहीं बाँधते थे परन्तु तीर्थंकर प्रकृत्ति बाँध के पूर्व जो Process है। उसमें तीर्थंकरत्व ही घूँटता था। उसे क्या कहते हैं ? तीर्थंकरत्व ही झलकता था। यानी कि वे तो सिंहवृत्ति में थे। ये ट्रस्टी लोग क्या करते हैं ? और क्या चल रहा है ? कभी पुछने तक की दरकार नहीं थी कि, आपके पास कितनी राशि जमा हो गई ? और तो और कोई मंदिर आदि बनाने के लिये अगर अपेक्षावृत्ति में दिखे तो निषेध करते थे, ये क्या ? याचक वृत्ति ? आपकी धन अर्पणता करने

की लोभवृत्ति कम हुई हो तो ही भगवान का मंदिर बनवाओ। शुभायतन है। परन्तु आपका लोभ वैसा का वैसा रह जाये और दूसरे से मांगने को जाना, आप मंदिर बनाने के लायक नहीं हो। मंदिर बनाकर भगवान के दर्शन का योग तो आपको ही है या दूसरे किसी को है ? तो इसमें तो आप अपना लोभ घटाकर अशुभ-कम करके इतने शुभ में आईये। दूसरे के पास मांगने का सवाल कहाँ है इसमें ? सीधा न्याय है। इसलिये मानो कोई ऐसी परिस्थिति खड़ी हो जाये तो भी, ना कर देते थे। बिलकुल नहीं ऐसी पद्धति नहीं होती, ऐसा कह देते थे।

यहाँ तो कहते हैं कि, `**भाई ! तेरे जैसा कोई धनाढ्य नहीं।**' तुझे पता नहीं है कि तेरे अंदर में गाढ़ी हुई धन संपत्ति की माफिक तेरे गुणों की संपत्ति भरी है, इसकी तुझे खबर नहीं। तेरे अंतर में तो साक्षात परमात्मा बिराजमान है, प्रगट परमात्मा बिराजमान है ऐसा कहते हैं। `**इससे अधिक धनाढ्यपन क्या हो सकता है ?**' इससे मूल्यवान दुनिया में दूसरा कोई धन नहीं है। जिसे धन कहते हैं इसे धूल बतलाते हैं।

इसबार हमने हिन्दी आत्मधर्म में एक बात प्रकाशित की है। यहाँ अभी आया नहीं लगता। इसबार का आखिर का। इसमें ऐसा लिखा है कि, मुनियों ऐसा कहते हैं कि, हमें जगत के जीवों का संग नहीं रुचता। जगत के जीवों का संग हमे नहीं रुचता। लिया तो है किसी ज्ञानी का वचन, सत्पुरुष के वचनमें वह बात आयी है। `ध्यानतरायजी' या किसी दूसरे का लिया है। और धनवानों का संग तो हमें अति दुःखदायक लगता है। और राजाओं का संग तो हमें मरणतुल्य लगता है। लोग ऐसा कहते हैं कि यह पैसेवाला है और हमारा इसके साथ संबंध हो तो अच्छा...!

`बहिनश्री' का दृष्टांत लिया था। अठारह साल की उम्र में सम्यग्दर्शन की शुद्धदशा को प्राप्त हुए हैं, इसके पहले पंद्रह साल की उम्र में भी ऐसी विचारदशा थी कि पंद्रह साल के थे तब एक साल बीत जाये या दो साल बीत जाये तो भी अखरता था कि, अरेरे..! ये तो पंद्रहमें से सत्रह साल हो गये और कल सुबह बीस या पच्चीस चले जायेंगे, इतनी देरी हो वह कैसे बरदास्त करें। जिस युवान उम्र में संसारी आत्माओं को अनेक प्रकार के बाह्य भोग-उपभोग के उदय शुरू होते हैं, मोक्षगामी आत्माओं की स्थिति कोई और होती है। वे कहते हैं यहाँ से छूटकर... काफी मंथन है। उस काल में उनका वैराग्य प्रगाढ़ है। तो ऐसे में एक दो साल यूँ ही बीत जाते हैं और साधना की सिद्धि भीतर में नहीं दिखती है तो कहते हैं कि, अरे..! यह तो काल-जीवन चला जा रहा है। क्या लगता है उन्हें ? ये तो जीवन मेरा चला जा रहा है, ऐसा लगता है। इसतरह भीतरमें से प्राप्ति की लगन लगनी चाहिये। जिसको जो वस्तु तीव्र लगनपूर्वक चाहिये उसमें उसे देरी होती है वह नहीं पुसाता। यह इसकी वास्तविक्ता है।

इसलिये कहते हैं कि, `**इसकी लगन लगनी चाहिये। इसके पीछे पागल हो जाना चाहिये।**' ऐसा है। जैसे पागल आदमी को मनुष्योचित व्यवहार नहीं रहता। उसे लोग मुझे पागल कहेंगे इतना विचार तक नहीं आता ऐसी वह प्रवृत्ति करता है। अगर उसे पागलपन की शरम आये तो पागलपन के योग्य प्रवृत्ति न करे। ऐसे लोकलज्जा को छोड़कर, लोगों में रूढ़ि, रीत-रसम और समाज के बंधन तोड़कर प्रवृत्ति करना इसे `पागल हो जाना चाहिये' ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु :- `गुरुदेवश्री' ने कमाल कर दी। कैसे शब्दों में अभिव्यक्ति की है ?

पूज्य भाईश्री :- यह सब वास्तविकता (है)। इसमें से गुजर चुके हैं। जिनको सम्यक्दर्शन होता है उसे लगन लगी होती है। और परमात्मा की प्राप्ति हेतु वे एकबार पागल होकर प्रयत्नवान होते हैं। किसी को बाहर में दिखता है तो किसी का

बाहर में नहीं भी दिखे। परन्तु परिणाम की स्थिति ऐसी ही होती है। अतः सर्व साधकजीव अपने अनुभव का वर्णन करते हैं। एक दृष्टि से देखा जाये तो वे उपदेश देते हैं ऐसा तो बाह्यदृष्टि से कहा जाता है, परन्तु एक उनका दृष्टिकोण देखे तो ऐसा है कि वे अपने अनुभव का वर्णन करते हैं अपना अनुभव बतलाते हैं कि ऐसा होना चाहिये। हमें ऐसा हुआ था और आपको भी जब ऐसा होगा तब प्राप्ति होगी। इसके अलावा दूसरा कोई रास्ता नहीं है। सब की ऐसी स्थिति है। किसी की स्थिति कुछ और है, ऐसा नहीं है। और इसका कारण यह है।

जगत में भी आदमी को बहुत लाभ का कारण हो, तब उस लाभ के प्रसंग को वह Top Priority देता है। तब वह क्या करता है ? कि, दूसरे प्रसंग खड़े होने पर वह कैसे इसको Avoid करता है, इसकी पूरी तरकीब उसके पास होती है। फिर किसी संबंधी के वहाँ शादी हो तब कहेगा, बापुजी ! आप हो आईये न। आप जायेंगे तो अच्छा लगेगा। और वैसे भी मैं यहाँ काम में फँसा हूँ, मैंने Director की मिटिंग बुलाई है और इसमें कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने हैं। ठीक !

दो अरब यानी २०० करोड़ का Plant डाला हो, और जल्दी से Production शुरू करना हो, इसकी अनुमानित स्थिति ऐसी हो कि, छः महीना की देरी हो गई तो इतना मुनाफा गया, बारह महीना देर लगे तो Cost of Production इतनी बढ़ जायेगी। और अगर दो साल देरी लग गई मानो, जब तो दिवाला निकल जायेगा। पूरे दोसौ करोड़ का नुकसान हो जायेगा। ऐसी इसकी गंभीरता दिखती है। पूरे २०० करोड़ का नुकसान दिखे तो जी जान लगा देता है, परन्तु आत्मा नरक-निगोद में जाये तो इसकी कोई परवाह नहीं करता है, ऐसी स्थिति जीव की है। जीव ने मूल्यांकन नहीं किया। इस विषय का जीवने मूल्यांकन नहीं किया है, ऐसी परिस्थिति है। इसलिये पिताजी को कहता है कि आप जायेंगे तो अच्छा लगेगा। किसी का निधन हो जाये तो बड़े भाई को कहेगा आप ज़रा जायेंगे तो ठीक रहेगा। मेरी यह मिटिंग है। ठीक ! और यहाँ सोनगढ़ जाना होगा तो कह देगा, क्या करुं ? मेरे घर अभी महेमान आनेवाले हैं। ठीक ! मामूली कारण मिलने पर स्वाध्याय में जाना छोड़ देगा। मामूली-सी कारणरूप बाधा आने पर सत्संग छोड़ देगा। स्वाध्याय नाम सत्संग। मामूली प्रसंगवश ज्ञानी का समागम छोड़ देगा। ऐसे जीव को आत्मा की लगन और पागलपना आना तो बहुत दूर की बात है। ऐसी परिस्थिति में तो कभी आत्मा के नज़दीक भी नहीं जाना होता।

मुमुक्षु :- तितली की माफिक झपट लगानी चाहिये।

पूज्य भाईश्री :- हाँ, विचार करने नहीं रूकता कि दीया बहुत सुंदर है। इसमें क्या है ? चक्षु इन्द्रिय का उसका विषय है। भूतकाल में रूप देखने के लिये बहुत पागलपन किया है। पुद्गल परमाणुओं के रंगगुण की पर्याय है और उसे देखने का मोह व आकर्षण पूर्व में रह चूका है कि वह जीव तितली बना है। वहाँ भी प्रकृतिवश जीव की वही स्थिति रही है कि, जैसे ही दीये को देखता है, कि उसके शरीर को स्वाहा कर बैठता है यह तो फिर भी बाहर की स्थिति है। भीतर में उसके परिणाम में झपट क्या चीज़ है इसका अंदाजा लगाने जैसा है। चाहे जलकर स्वाहा-भस्मिभूत हो जाऊँ तो भी रूप से मैं दूर नहीं रह सकुँगा। यह परिस्थिति है।

यह विभाव में तो जीव पागल होता ही है, विभाव में तो पागल होता ही है। ये सब पागलपन अनेक प्रकार के चलते ही हैं न। फेशन के नाम पर कपड़े और दूसरे.. दूसरे पागलपन नहीं चलते क्या ? वहाँ उसे कोई विचार-विवेक का प्रश्न नहीं उठता जबकि यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि थोड़ा

विवेक रखना चाहिये, हमें थोड़ा विवेक रखना चाहिये। धर्म भले ही करें किन्तु थोड़ा विवेक रखकर धर्म करना चाहिये। ठीक ! उसमें भीतर (आत्मा में) उछलकर जाने की बात उसमें नहीं रहती। ऐसी बात है।

कहते हैं कि `**इसकी लगन लगनी चाहिये, इसके पीछे पागल हो जाना चाहिये ऐसे परमात्मस्वरूप की धून लगनी चाहिये।**' ऐसी धून लगती है कि, उसे खाते समय क्या खा रहा हूँ इसका ध्यान तक नहीं रहता। क्या खा रहा हूँ यह भी पता नहीं चलता तो कैसी रसोई बनी है और इसका स्वाद लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। `गुरुदेवश्री' इसलिये दृष्टांत देते थे कि, उडद की दाल ठीक से बनी न हो तो तूफान मच जाये। सत्ताप्रिय प्रकृतिवाला आदमी हो और घर में बहुओं ने दाल थोड़ी ठीक से बनायी न हो, तो `ढीचनीयु' (भोजन करते वक्त पैर के नीचे रखा जाता है।) उसे गुस्से से फेंके। गुस्सा करे। पूरा का पूरा उडद की दाल में एकाकार हो गया होता है। अब इतनी छोटी-सी बात में जीव के परिणामों का ठिकाना नहीं रहता ऐसे जीव को आत्मा की धून लगे कहाँ से ? कि, कब क्या खाता हूँ इसका भी ध्यान नहीं रहता ऐसी धून लगी रहती है फिर वह चीज़ कैसी बनी है और कैसी नहीं बनी है ? अच्छी है या बूरी इसका विकल्प तो जीव को आयेगा कहाँ से ? `टोडरमलजी' का एक दृष्टांत है। बीच में वे धून में रहते थे। बहुत धून में रहते थे।

मुमुक्षु :- `मोक्षमार्गप्रकाशक' की रचना की तब ही रहते थे न ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, `मोक्षमार्गप्रकाशक' लिखा तब। बहुत शास्त्रों का दोहन करके लिखा है न। बहुत अतिशय बुद्धिशाली थे, असाधारण बुद्धिशाली थे। और छोटी उम्र में ही उन्होंने... २८ साल की उम्र में तो उनका देहांत है। छोटी उम्र में सेंकड़ो शास्त्रों को न केवल पढ़ लिया था परन्तु इसका तात्पर्य निकालकर दे ऐसे पढ़ लिये थे ! शास्त्रकर्ता के अनुभव की गहराई तक पहुँचकर पढ़ लिये थे। अतः जब वे शास्त्र की रचना करने बैठे तब उस विषय में इतनी लगन व धून थी कि छः महीने तक रसोई में उनके मातृश्रीने नमक नहीं डाला। उसवक्त तो छोटी उम्र थी इसलिये उनके मातृश्री रसोई बनाते थे। छः महीने तक नमक ही नहीं डाला। उनको लगा देखूं तो सही बेटे को कब ध्यान जाता है कि, यह बिना नमक की रसोई है। ऐसे ही छः महीने बीत गये। छः महीने बाद एकबार उन्होंने कहा, माँ ! नमक डालना शायद भूल गये हैं आप। आज रसोई में नमक नहीं है। तब माँ ने कहा, आज ही नहीं है क्या ? मुझे तो लगता है कि, आज आप भूल गये हैं। तब माँ ने कहा पीछले छः महीने से नहीं डाल रही हूँ। ठीक ! उस विषय की इतनी धून थी कि छः-छः महीने तक उन्हें पता नहीं चला है कि रसोई में नमक नहीं है। ऐसी स्वरूप की धून, परमात्मतत्त्व की धून लगनी चाहिये।

अगर `**सच्ची धून लगे तो**' अगर शब्द अध्याहार है वहाँ पर। `अगर' `अगर' और `तो' अपेक्षित है न ? अतः अगर `**सच्ची धून लगे तो, जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ?**' रहे ही नहीं ऐसा कहना है। यह दिखाने हेतु प्रश्नार्थ लिया है। कि अगर `**सच्ची धून लगे तो, जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ?**' ज्ञानियों का, सर्व ज्ञानियों का यह, अनुभव है कि स्वरूप की धून लगे तो स्वरूप प्रगट हुए बिना नहीं रहता। इसे धून कहो, भावना की उत्कृष्ट परिस्थिति कहो कि, अगर ऐसी भावना के फल में चैतन्य प्रगट न हो तो चौदह ब्रह्मांड को बदलना पड़े। यह उनके निश्चय की पुकार है। सत्य का अनुभव, सत्य की यह पुकार है। सत्यस्वरूप के अनुभवमें से सत्य स्वरूप की यह पुकार है कि अगर भीतर में परिणाम की सच्ची भावना और धून की

परिस्थिति खड़ी हो और अंदर से परमात्मा प्रगट न हो तो चौदह ब्रह्मांड को बदलना पड़े हालाँकि चौदह ब्रह्मांड तो क्या एक रजकण का पलटना भी नामुमकिन है यानी कि ऐसी स्थिति अशक्य है वैसे ही भीतर में चैतन्य के अनुभव से वंचित रहना भी उनके लिये अशक्य है। ऐसा बन ही नहीं सकता।

भूतकाल में किसी भी जीवात्माओं के लिये ऐसा नहीं बना। ऐसे अनन्त हो चूके हैं कि, जिन्हें आत्मा की, परमात्मा की धून लगी हो किन्तु एक को भी आत्मा प्रगट नहीं हुआ हो ऐसा भूतकाल में कभी भी एक अपवादरूप किस्सा भी नहीं बना और भविष्य में भी कोई नहीं बनेगा। साधकदशा में आने के लिये अनन्त आत्माएँ इसतरह की पात्रता में आयेंगे परन्तु सबों की यही स्थिति (रहेगी)। कभी किसी के लिये ऐसा नहीं होगा कि, उसकी काललब्धि का परिपाक नहीं आया और उसके नसीब में अनुभव नहीं है जिसकी बदौलत धून लगने के बावजूद भी सफलता नहीं मिलेगी। `न भूतो न भविष्यति' कभी ऐसा नहीं बनता।

ऐसे जीव को यहाँ बल देते हैं कि, `**सच्ची धून लगे तो जो अन्तर स्वरूप है वह प्रगट हुए बिना कैसे रहे ? अवश्य ही प्रगट हो।**' नहीं प्रगट होने का सवाल ही नहीं उठता। यहाँ से यह सूचित होता है कि, जो कुछ रह गया है वह अपने कारण से ही रह गया है। इस जीव को भीतर में कोई न कोई अटकने का कारण है जिसे वह प्रधानता दे रहा है, मुख्यता दे रहा है जिसके आगे आत्मा को गौण करता है, परमात्मा को गौण करता है। या जैसे खुदका जो परमात्मस्वरूप है उसकी पहचान से वंचित रहा है। अगर पहचान होती तो कींमत आये बिना रहे ही नहीं।

एक ही हीरा हो जिसको एक जवाहरी ऐसा कहे कि एक लाख रुपये तक लेना है जबकि दूसरा इसे जाँचकर ऐसा कहे कि, पचास लाख देने के लिये तैयार हूँ, तब उसने कीमत पचास लाख मतलब पचासगुनी ज्यादा नहीं की बल्कि इससे भी अधिक कीमत समझी है। उसे कोई पचास लाख का हीरा खरीदकर पचास लाख और पाँचसौ में नहीं बेचना है। पाँचसौ के मुनाफे के लिये कोई पचास लाख का इनवेस्टमेन्ट नहीं करना है। इसके सामने दूसरे पचास लाख का मुनाफा वह देख रहा है, जानता है कि यह एक करोड़ का हीरा है, जिसकी यह लाख रुपया कीमत लगाता है, हम तो पचास लाख देने के लिये राज़ी है। पहचानने पर इसकी कीमत आती है।

वैसे यहाँ आत्मा की पहचान न करे, जबकि स्वाध्यायादि का व्यवहार है वह आत्मा की पहचान करने के लिये है। इसकी पहचान अगर नहीं कर ले तो इसकी कीमत नहीं आती और कीमत नहीं आती तबतक इसका रस नहीं आता। नीरसता आ जाती है। सुनते.. सुनते... सुनते क्या हो जाता है ? नीरसता आ जाती है कि आत्मा भिन्न है.. भिन्न है.. भिन्न है... एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। आत्मा भिन्न है। परमात्मा है ऐसा है, वैसा है। ये सब तो हमें पता है किन्तु अभी बेटे की शादी है, बेटी की शादी है तब उसका काम करे या यह सब करना ?

मुमुक्षु :- हररोज़ एक ही बात आती है।

पूज्य भाईश्री :- और यहाँ तो हररोज़ एक ही बात का ज़िक्र आता है। इसमें दूसरी नई बात थोड़ी है ? रोज़ाना एक ही बात करते हैं ये तो। कहते हैं कि, भाई ! इसतरह तू अपने परमात्मा को ठोकर मारता है, जैसे घर में हीरा पड़ा हो और पहचाने नहीं तो ठोकर लगाये वैसे यह तो सिद्धपद व अरिहंत पद को लात मारने की बात है, और कुछ नहीं है। इसमें इनका अनादर है। जिसका परमोत्कृष्ट आदर करने लायक है वही परमात्मपद का अनादर करता है, तुझे ये भारी पड़ेगा। यहाँ तू कोई स्थायी रहने का अमरत्व

लेकर नहीं आया। फिर से कहाँ का कहाँ चला जायेगा।

जगत के परिभ्रमण में अनन्तानन्त जीव परिभ्रमणरूपी तूफान में भटक रहे हैं। यह Cyclone-तूफान हुआ था न अभी ? कुछ ही घण्टे में तो लोग त्रस्त हो गये। सात घण्टे के करीब चला होगा परन्तु ऐसा लगा कि, क्या होगा अब ? कुदरत का कहर ! यह परिभ्रमण का कहर है !! जिसमें अनन्तानन्त जीव परिभ्रमण कर रहे हैं। अनन्त सिद्धात्माओं से भी अनन्तगुने ज्यादा तो एक आलू के छोटे से कण में होते हैं। जगत में कितने आलू और कितने कंदमूल हैं ! कितने वनस्पति और कितने पानीकाय के, कितने वायुकाय के जीव !! बहुत बड़ी तादात में-निगोद का पेट बहुत बड़ा है। ये चौदह ब्रह्माण्ड में ३४३ घनराजू है।३४३ घनराजू प्रमाण है। एक सुई के Point जितनी जगह भी जीव बिना की नहीं है। सुई के Point जितनी भी कहीं पर जगह खाली नहीं है। इतने ठूस ठूसकर अनन्त जीव परिभ्रमण के तूफान में चौदह ब्रह्मांड में घूम रहे हैं। यहाँ यदि बेफिक्र रहकर नहीं समझा तो कहाँ जा पहुँचेगा इसका कोई अतापता नहीं लगेगा। ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलेगा। ऐसा है।

घूमने जाते हैं न। ये Hill Station में। ये `महाबलेश्वर' की ओर गहरी खाई है। इसतरफ बहुत गहरी खाई है। `मसूरी' और उस तरफ तो बहुत गहरी खाई है। हिमालय की पहाड़ियों में। इतनी बड़ी खाई है कि, घोड़ेसवारी करनेवाले कईलोग मर जाते हैं। हमारे (एक मुमुक्षु) का बेटा इसमें (मर गया)। जीने का तो खेर सवाल ही नहीं है किन्तु मुरदा भी हाथ नहीं लगता। घोड़े का मुरदा भी हाथ नहीं लगा। मनुष्य का मुरदा हाथ लगने का तो सवाल ही नहीं है। इतनी गहरी खाई में जा गिरता है।

इस तरह इस जगत में निगोद की बहुत गहरी खाई है। कहाँ जायेगा, जीव का पता तक नहीं लगेगा। कौन कब कैसा था ! (किसको पता ?) कितने ही राजेश्वरी इसमें जा गिरे हैं। जिसको देखे तो खमा..खम्मा सब करते हो। `कोई हाज़िर है ?' ऐसा कहते ही दरबार के सौ के सौ दरवाजे पर, हज़ार दरवाजे पर हज़ार पहरेदार खड़े होते हैं। जी हजूर! कहकर नमन-नमन करते हैं। वे लोग कहाँ जाते हैं इसका कोई अतापता नहीं मिलता।

क्यों ? क्योंकि उसने अपने आप की कीमत नहीं की वही, और कोई वजह नहीं है। जगत के पदार्थों की कींमत देकर वहीं आसक्त रहा फिर कुदरत उसे भ्रमण कराती है। इसका मूल्य छोड़कर जो आत्मा में लीन हुआ यानी स्थिर हुआ वह सदा ही अविचल शाश्वत गति को पाता है। सिद्ध गति को प्राप्त होता है। उन्हें दुःख का नामोंनिशान नहीं रहता। निशान भी नहीं रहता है कि, पूर्व में उसे कोई दुःख भोगना पड़ा भी था ऐसा कोई चिह्न नहीं रहता। ऐसी स्थिति को प्राप्त होता है।

लाभ-नुकसान की तुलना करे और उसे अगर यह बात समझ में आ जाये कि इसमें लाभ कितना है और नुकसान कितना है ? कितने नुकसान से बच जाये ? कितने बड़े नुकसान से बच जाये और कितना बड़ा लाभ होवे ? इतना यदि समझ में आ जाये तो इसकी सर्वोत्कृष्ट अग्रता आये बिना रहे नहीं। सर्वोत्कृष्ट अग्रता को परम उपादेयता कहते हैं। इसकी परम उपादेयता आती है और जब परम उपादेयता आती है फिर इसके लाभ से वंचित रहना नहीं पड़ता इसकी Guarantee यहाँ पर श्रीगुरु देते हैं कि, यह हमारी Guarantee है। एक बार तू सच्चे रंग में आ जा। वरना ऊपर-ऊपर से झूठा दिखावा करने से तेरा परमात्मा तो धोखा खानेवाला है नहीं। जगत के जीव शायद धोखे में आ जायेंगे और कहेंगे भाई तो बहुत अच्छे... भाई तो बहुत अच्छे... भाई तो बड़ी ऊँची-ऊँची बात करते हैं, परन्तु इसमें परमात्मा तो धोखा नहीं खानेवाले हैं। यहाँ तक रखते हैं।

मंगलमय सुप्रभात

आज लौकिक त्यौहार है। कल अलौकिक धार्मिक त्यौहार था। भगवानका निर्वाण हुआ, सिद्धालयमें पधारे। देवोंने इसका उत्सव मनाया और धार्मिक महोत्सवके रूपमें इसकी भक्ति और बहुमान हुआ। आजका दिन तो लौकिक रूपसे, नया साल शुरू हुआ, नये सालका पहला प्रभात, सुबह है इसलिये प्रभात है ऐसा कहा जाता है।

आत्मामें निजज्ञानका-स्वरूपज्ञानका प्रकाश हो, जिस ज्ञानमें अपना निरावरण केवलज्ञान सूर्य जिसमें है ऐसा स्वरूप प्रकाशमान हो, केवलज्ञान-स्वरूपका शुद्धात्माके जिस प्रकाशमें दर्शन हो ऐसे ज्ञानके प्रकाशको वास्तवमें सुप्रभात कहा जाता हैं। वह वास्तवमें सुप्रभात है और सबसे बड़ा सुप्रभात केवलज्ञान प्रगट होता है वह है। आत्मज्ञान प्रगट हो वह सुप्रभात है। मुमुक्षु के लिये शुरूआत है।

जो साधक आत्माएँ हैं उन्हें ऐसा सुप्रभात प्रगट हो चुका है, उन्हें केवलज्ञानकी अभिलाषा है। उसे केवलज्ञान प्रगट हो वह सुप्रभात है। बाकी तो ऐसे नये वर्ष अनंतबार आये और अनंतबार गये। सूर्य रोज उदित होता है और रोज अस्त होता है, उसमें कोई आश्चर्य नहीं है, उसमें कोई अपूर्वता नहीं है। जिस दिन, जिस धन्य पलमें अपना आत्महित हो वह नवीन है, उस समय वह चाहे कौनसा भी दिन हो तो वह सुप्रभात है। भले ही वह कार्तिक शुक्ला एकमका दिन न हो, फिर भी वह सुप्रभात ही है।

जिसका एक ही ध्येय है, इस जीवनमें जिसका एक ही ध्येय है कि मुझे अपना आत्महित करके ही रहना है, उसका जब हित (आत्मकल्याण) हो जाय तब प्रभात, तब नया वर्ष, नया जीवन, नया साल क्या नया जीवन प्रगट हो गया और किसी भी तरहसे, चाहे कुछ करके भी वह करने योग्य है, वह कर लेने योग्य है।

- पूज्य भाईश्री शशीभाई

सुप्रभात

अज्ञान और मिथ्यात्व तिमिर का नाश करके सम्यग्दर्शनरूपी सुप्रभात प्रगट करे ऐसी भावना के साथ `स्वानुभूतिप्रकाश' के सर्व पाठकवर्ग को नुतन प्रभातकी शुभकामना।

- स्वानुभूतिप्रकाश परिवार

द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-३० पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.७-८-१९९१

(पीछले अंकसे शुरु...)

यह उसके जैसा है - आदमी चीनी या अनाज लेने जाता है न ! फिर जब उसमेंसे पसंदगी करनी हो तब व्यापारकी भाषामें ऐसा कहता है, अलग-अलग दो (तब व्यापारी क्या कहेगा) कि, दस बोरी पड़ी है। तो (वह कहेगा) दसों बोरियोंमेंसे नमूना निकालो। अतः दसों बोरियोंमेंसे नमूना निकालकर दस ढेरी करेगा। फिर वह नमूनेकी जाँच करके कहेगा कि, यह पाँचवीं बोरी अच्छी है। क्या कहेगा ? पाँचवाँ नमूना अच्छा है ऐसा नहीं कहेगा, पाँचवीं बोरी अच्छी है, (ऐसे कहेगा)। यानी कि देखेगा नमूनेको और लक्ष्यमें पूरी बोरी आयेगी! यह ज्ञानका कार्य है - एक साथ दो जगह काम करना ! (वैसे) अनुभव करे पर्यायका और लक्ष्य हो त्रिकालीका - ऐसा कहना है। क्या (कहना चाहते हैं) ? अनुभव करे - वेदन करे पर्यायका और लक्ष्य हो त्रिकालीका ! यह इसके जैसा है कि देखे नमूना और लक्ष्यमें ले पूरी बोरी। (वह ऐसा कहेगा) पाँचवीं बोरी अच्छी है भाई ! पाँचवीं बोरी पर मेरा नाम लिख दो ! हमारे नामका निशान कर लो ! यह बोरी भेज देना, दसमेंसे यह एक बोरी ली है। पाँचवीं बोरी मुझे भेज देना। देखे नमूना और लक्ष्यमें (ले पूरी बोरी)। ज्ञान कैसा काम करता है ! एक साथ Double काम करता है ! ऐसा होता है। अज्ञानीको भी ऐसा होता है। चलनेका दृष्टांत नहीं लेते हैं ? चलते वक्त देखता है Traffic को कि, किसीसे टकरा न जाऊँ, खड्डेमें गिर न जाऊँ, रास्ता, Traffic सब ध्यानमें रखेगा, जहाँ Crossing हो, चार रास्ते जहाँ मिलते हो, तब एक साथ सब रास्तेका ध्यान रखेगा। सामनेसे, दायीं ओरसे बायीं ओरसे (ऐसे सब तरफ ध्यान रखेगा)। यह हम गांधीस्मृतिकी ओर यहाँसे जाते हैं कि नहीं ? यहाँ तो Traffic के नियम जैसा कुछ नहीं है, Wrong side मेंसे भी लोग आते हैं। दायीं ओरसे भी लोग आते हैं और बायीं ओरसे भी Cross करते हैं। एकसाथ तीन जगह और रास्तेका -

सबका ध्यान रखना पड़े। तीन दिशा, चौथा यह कि रास्तेमें कहीं खड्डा तो नहीं है, कीचड़ तो नहीं है, और तो कुछ नहीं है, कोई बकरी या कुछ और कुचल तो नहीं रहा - ऐसे चारों तरफ ध्यान रखते हैं फिर भी लक्ष्य घर पहुँचनेका होता है। ज्ञानमें कितना सामर्थ्य है !! ज्ञानमें उस प्रकारका सामर्थ्य है। ज्ञान अर्थात् सिर्फ जानना, इतना ही नहीं है। ज्ञानमें बहुत भरा है। अभ्यास करे (और) सूक्ष्मतासे देखे तो काफी कुछ भरा है। (कोई ऐसा कहे कि) ज्ञान...ज्ञान क्या करते हो ? ज्ञान अर्थात् जानना...जानना वह ज्ञान बस बात पूरी हो गई। भाई ! ज्ञानमें तो बड़ा भण्डार भरा है ! इतना बड़ा भण्डार है। छद्मस्थके ज्ञानमें इतनी सारी विशेषताएँ हैं।

(यहाँ क्या कहते हैं ?) कि `**अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्वरूपमें प्रसरते ही...**' ये श्रद्धाप्रधानतासे बात की है। `**प्रसिद्ध वेदन गौण होकर...**' पहले कहेंगे कि (ज्ञान)वेदनको मुख्य करके रागको गौण करे। अब कहते हैं कि, प्रसिद्ध ज्ञानके वेदनको गौण करके,... `**एक ही काल त्रिकाली व वर्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है।**' वह वर्तमान पर्याय गौण होवे तो त्रिकालीका अनुभव हो। (ऐसा कहते हैं)। गौणरूपसे भी उसका वेदन है, त्रिकालीका वेदन नहीं है। एकसाथ दोनोंका युगपत् ज्ञान है। उसे प्रमाणज्ञान कहनेमें

आता है।

(एक पत्रमें) कितनी बात ली हैं ! भेदज्ञानकी बातमें रागको गौण करवाया, (ज्ञान) वेदनको मुख्य करवाया। आगे जाकर त्रिकालीको मुख्य करवाया (और) वेदनको गौण करवाया और प्रमाणसे दोनोंका अनुभव होता है, ऐसा लिया। यह गुरुदेवकी वाणीका सार मैंने इतना लिया है। उसमें सब आ गया। एक पैराग्राफमें (सब आ गया)। वरना गुरुदेवका इतना परिचय नहीं है, (परंतु) अंतरसे सारी बातें अनुभवगोचर हैं इसलिए भाषामें व्यक्त की है।

`**यह ही भेदज्ञान है।**' हमलोगों की कभी भेदज्ञानकी चर्चा चलती तब वे ऐसा कहते थे कि, भेदज्ञानका विषय आपको बहुत स्पष्ट है ! उन्हें गुरुदेवका परिचय उतना नहीं था। गुरुदेवके प्रवचनमें भेदज्ञानका विषय बहुत चलता। जब भी आता बहुत अच्छा चलता। `**रागसे पृथक् ज्ञानका अनुभव ऐसे ही होता है अन्यथा नहीं।**' यह तीसवाँ (पत्र पूरा) हुआ।

द्रव्यदृष्टि प्रकाश पत्रांक-३३ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का प्रवचन, दि.८-८-१९९१

आत्मार्थी... धर्मस्नेह !

`**पत्र ता. २२-११का यथा समय मिला।**' बाईस तारीखका लिखा हुआ पत्र चार-पाँच दिन बाद मिला होगा, फिर नौ तारीखको जवाब लिखा है। जो अवतरणचिह्नमें है वह प्रश्न है। `**अस्थिरतासे...**' यानी मोक्षमार्गी जीवको चारित्रगुणकी पर्यायमें जो अस्थिरता होती है उसके कारण (अर्थात्) अस्थिरतासे `**देवादिक प्रत्येके परिणामोंमें...**' (अर्थात्) देव-गुरु-शास्त्र प्रतिके परिणामोंमें `**खेद वर्तते...**' (मतलब) खेद तो वर्तता है। क्योंकि वह तो राग है इसलिए खेद वर्तते - (ऐसा लिखा है)। क्योंकि आकुलतामय है न ! और अभिप्रायमें उसको चाहते नहीं `**खेद वर्तते व अखण्ड सद्भावरूप परिणमन होते हुए...**' और अखण्डके सद्भावरूप, (यानी) दूसरा अंश जो है वह अखण्डके प्रति झुका हुआ है, उसमें अखण्डका अस्तित्व पकड़ा है। ऐसा परिणमन होते हुए, `**धर्मीजीव...**' धर्मीजीवकी यह दशा है। अस्थिरतासे देवादिकके प्रति खेद सहित परिणाम जाते हैं। दूसरी ओर अखण्डके साथ सद्भावरूप परिणमन (वर्तता है)। ऐसे `**धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है, ऐसा दिखता है।**' क्या कहते हैं ? कि ऐसे धर्मीजीवको बुद्धिपूर्वक देव, गुरु, शास्त्र प्रत्येके परिणाम होते हैं। दृष्टांतरूपसे भगवानकी पूजा करूँ, श्रीगुरु हो तो उनका सत्संग करूँ, ऐसे बुद्धिपूर्वक (परिणाम होते हैं)। (ऐसे) धर्मजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये जो प्रवृत्ति होती है वह स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयसे होती है। राग करनेके खातिर राग नहीं करते। परंतु उन-उन निमित्तोंको वे वीतरागतामें निमित्त बनाते हैं अथवा वीतरागता बढ़ानेका आशय है, वीतरागता वृद्धिगत करनेका आशय है। राग वृद्धिगत करनेका आशय नहीं है क्योंकि वे धर्मीजीव हैं।

`**धर्मीजीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्य तौरसे होती रहती है,...**' मोक्षमार्गीजीवको तो मुख्यतया बाह्य प्रवृत्तिमें भी वीतरागता और स्वरूपको दृढ़ करनेका ही आशय है। `**ऐसा दिखता है।**' ऐसा लगता है। `**इस पर विशेष स्पष्टीकरण चाहा सो निम्न है :-**' इस बात पर आपने स्पष्टीकरण चाहा है सो वह स्पष्टीकरण निम्नरूपसे है।

मुमुक्षु :- किस पर लिखा गया यह पत्र है ?

पूज्य भाईश्री :- मेरे पर लिखा है। मैंने ही पत्र लिखा था। भाषा उस तरह ली है, दोनों तरफके पहलूसे भाषा ली है और उस पर स्पष्टीकरण चाहा है कि धर्मीजीवको बुद्धिपूर्वक देव,

गुरु, शास्त्रके प्रतिके परिणाम तो होते हैं और उसमें तो स्वरूप दृढ़ीभूत करनेका आशय होता है, मुख्यरूपसे तो यही आशय होता है। ऐसा लगता है (तो) इस बात पर आपका स्पष्टीकरण क्या है ? आप क्या कहना चाहेंगे ? (इसके जवाबमें) एक मुद्दे पर सात Point लिखे हैं। बहुत अच्छे मुद्दें हैं।

१. `स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।' (परिणामका) जितना अंश बाहर जाता है, उतना नुकसान है। उसका लाभ नहीं गिनना। जो बहुत अच्छी बात कही है वह पहले ही वाक्यमें कर दी है कि, ज्ञानी हो तो भी; उतना अंश बाहर गया न ! (तो) बाहर गया उतना नुकसान (है)। अंदर गया उतना लाभ। बस ! दो भाग कर दिये। वहाँ भी कोई लाभ है, वह बात सिद्धांतके बाहर है, ऐसा कहना है। सिद्धांतमें वह बात नहीं। निश्चय सिद्धांत देखा जाये तो - पहला खुलासा निश्चयसे कर दिया। फिर अब दूसरी अलग-अलग अपेक्षाएँ लेंगे। परंतु पहले एक बात शुद्ध निश्चयनयसे कर दी है कि, **`स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।'**

मुमुक्षु :- परलक्ष्यसे स्वरूपकी दृढ़ता होती ही नहीं।

पूज्य भाईश्री :- (हाँ) ऐसा कहना है। भले ही सामने वीतरागदेव हो। सिद्धांत स्थापित कर दिया। अब इसमें क्या है कि, (मान लो) कोई धर्मीजीव है वह वीतरागदेवका दर्शन करता है। वह उपयोग (बाहर) गया सो लाभका कारण नहीं है (परंतु) उपयोग वापिस आया वह लाभका कारण है। धर्मीजीव भगवानकी वीतरागताको देखता है। (जब) भगवानकी वीतरागताको देखता है तब सीधा स्वरूप स्मरण आता है कि, मेरा स्वरूप भी ठीक ऐसा है। बादमें जो (उपयोग) स्व तरफ आया वह लाभ है। तब वह पूर्वपर्यायको निमित्त कहनेमें आता है। यह जवाबमें सूक्ष्मता है।

क्या कहना है ? जो उपयोग देवके प्रति गया वह तो `परदवाओ दुगई' जो कुंदकुंदाचार्यदेवने अष्टपाहुडमें कहा (और) जो गुरुदेव दोहराते थे। परद्रव्यके प्रति (जो परिणाम गये) वे आत्माको गति करने जैसे परिणाम ही नहीं। भले फिर सामने वीतरागदेव बिराजमान हो, (वह) आत्माको गति करने जैसा परिणमन ही नहीं है। खुदको उस तरफके परिणामकी गति ही न हो !! (परंतु) वहाँसे उपयोग वापिस मुड़ता है तब उसे निमित्त कहा जाता है कि, जैसे भगवानके निमित्तसे भी लाभ हुआ। परंतु (वास्तवमें) तो उपयोग वहाँसे वापिस आया उसका लाभ है। (धर्मीजीवको भीतरमें) परिणति चलती है इसलिए जो स्वसंवेदनका स्मरण लिया, जो सावधानी ली (उसमें) विशेष (स्वरूप) सावधानी आविर्भूत करता है तो उसे वहाँ निमित्त कहा जाता है। क्योंकि उसके अलावा भी उस उपयोगको - परिणामको दूसरे निमित्त हैं, उपयोगको इसके अलावा भी निमित्त तो हैं परंतु इसे (देवदर्शनको) इसलिए कहा जाता है क्योंकि वहाँसे इस तरफ (निजस्वरूपके) प्रति मुड़ जाता है। तो ऐसा कह सकते हैं कि, उनका आशय ऐसा था, दर्शन करनेके लिए उसी हेतुसे गये थे। क्यों बुद्धिपूर्वक भगवानके दर्शन करने गये ? कि भीतरमें मुड़ना था इसलिए। उस निमित्तसे भी उन्हें अपने प्रतिका भाव आविर्भाव करना था, स्वरूपका भाव आविर्भाव करना था। तो (यहाँ ऐसा कहते हैं कि) लेकिन उतना तो (उपयोग) बाहर गया न ! वह लाभका कारण नहीं है। (स्वरूपके प्रति) झुका वह भले ही लाभका कारण हो परंतु केवल लाभका कारण नहीं है। उस टुकड़ेको अलग कर दो, ऐसा कहते हैं। बहुत अच्छी बात ली है।

मुमुक्षु :- बाहरमें उपयोग गया वह तो नुकसानका ही कारण है परंतु वहाँसे वापिस अपनेमें आया, इसलिए उसे निमित्त कहा ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, इसलिए निमित्त कहते हैं। परंतु वह (उपयोग) बाहर गया उसका पहले निषेध करो, उस निश्चयको पहले पकड़ो, ऐसा कहते हैं। उनकी चर्चामें जो मज़ा था, वह इसी बातका था। मैं चाहे कोई भी प्रश्न निकालूँ परंतु वे किस तरह बातको उठाते थे ! (उनका) ज़ोर बहुत था। ज़ोर बहुत था। इसलिए ज़ोरसे ही बातको उस प्रकारसे पकड़ाते थे। उस पद्धतिसे ही चर्चा चलती थी। उनकी चर्चाका ढंग व पद्धति ही ऐसी थी। यह विशेषता थी।

मुमुक्षु :- सच्ची रीत भी तो वही है न ?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, शुद्धनिश्चय है, यह तो एकदम शुद्धनिश्चय है। अब, आगे चलते हैं।

२. `मनआश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्डआश्रित सहज आंशिकवृत्तिका सद्भाव (उद्भव) नहीं हो सकता।' अब मान्यताका विषय लेते हैं। पहले आचरणका विषय लिया, अब मान्यताका लेते हैं। फिर आगे अलग-अलग पहलू लेंगे। पत्र बहुत अच्छा है। एक Issue दे तो उस विषयका कितने पहलूसे विचार करते हैं (यह) खयालमें आये ऐसा है। साधारणका काम नहीं।

(श्रीमद् राजचन्द्र पत्रांक)

३१९

बंबई, माघ सुदी ५, बुध, १९४८

अनंतकालसे स्वरूपका विस्मरण होनेसे जीवको अन्यभाव साधारण हो गया है। दीर्घकाल तक सत्संगमें रहकर बोधभूमिका का सेवन होने से वह विस्मरण और अन्यभावकी साधारणता दूर होती हैं। अर्थात् अन्यभावसे उदासीनता प्राप्त होती है। यह काल विषम होनेसे स्वरूपमें तन्मयता रहना दुष्कर है; तथापि सत्संगका दीर्घकाल तक सेवन उस तन्मयता को देता है इसमें संदेह नहीं होता।

जीवन अल्प है और जंजाल अनंत है; धन सीमित है, और तृष्णा अनंत है; इस स्थितिमें स्वरूपस्मृतिका संभव नहीं है। परंतु जहाँ जंजाल अल्प है, और जीवन अप्रमत्त है, तथा तृष्णा अल्प है अथवा नहीं है, और सर्व सिद्धि है, वहाँ पूर्ण स्वरूपस्मृति होना संभव है। अमूल्य ऐसा ज्ञानजीवन प्रपंचसे आवृत्त होकर चला जाता है। उदय बलवान है।

३२४

बंबई, माघ वदी ४, बुध, १९४८

चारों तरफ उपाधिकी ज्वाला प्रज्वलित हो उस प्रसंगमें समाधि रहना परम दुष्कर है औ- यह बात तो परम ज्ञानीके बिना होनी विकट है। हमें भी आश्चर्य हो आता है, तथापि प्रायः ऐसा रहा ही करता है ऐसा अनुभव है।

जिसे आत्मभाव यथार्थ समझमें आता है, निश्चल रहता है, उसे यह समाधि प्राप्त होती है।

सम्यग्दर्शन का मुख्य लक्षण वीतरागता जानते हैं, और वैसा अनुभव है।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (अक्टूबर-२०११) का शुल्क श्री विजय ओईल मील, मुंबई के नाम से साभार प्राप्त हुआ है, जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।

मेरे आत्मा को कैसे लाभ पहुँचे वह एक ही प्रयोजन आत्मार्थीको होता है। श्री जिनेन्द्रदेव जिन्होंने साधना प्रगट की है ऐसे उपकारी गुरु तथा शास्त्र की प्रभावना कैसे हो ऐसी उसे प्रीति होती है। जिन्होंने आत्मा का मार्ग बतलाया, उसकी प्राप्ति हेतु मार्गदर्शन दिया और जिनका परम उपकार है उनकी प्रभावना कैसे हो, वैसा हेतु पात्र शिष्य को होता है, अन्य कोई हेतु नहीं होता। यह पात्र जीव का लक्षण है। (**स्वानुभूतिदर्शन-२४३**)

❋

प्रश्न :- धार्मिक संस्थाके कार्य करनेमें क्या प्रयोजन होना चाहिये ? कार्योंमें भाग लेना या नहीं ?

समाधान :- धार्मिक कार्योंमें देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावना होती हो, अपनेको उसका विकल्प आता हो, तो उनमें भाग लेते हैं। देव-शास्त्र-गुरुकी प्रभावनार्थ एवं अपने आत्मार्थके लिये उनमें जुड़ते हैं। अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता।

(**स्वानुभूतिदर्शन-२४४**)

❋

प्रश्न :- उसमें आत्मा ही मुख्य होता है ?

समाधान :- आत्मा ही मुख्य होता है। मेरे आत्मामें संस्कार कैसे पड़े, उन संस्कारोंकी दृढ़ता कैसे हो, मैं चैतन्य न्यारा हूँ - ऐसा ही उसका प्रयोजन है। स्वयंको धर्मकी प्रीति है, इसलिये धर्मकी प्रभावना कैसे हो, गुरुदेवकी प्रभावना कैसे हो, गुरुके धर्मकी शोभा कैसे बढ़े, लोग इस मार्गको जानें - ऐसा शुभभावका विकल्प आता है। जिसे अपने स्वभाव की प्रीति है उसे गुरुके बताये हुए मार्गकी तथा गुरुकी भक्ति आये बिना नहीं रहती, इसलिये शुभकार्योंमें जुड़ता है, परंतु उनमें उसका हेतु आत्माका है। (**स्वानुभूतिदर्शन-२४५**)

❋

प्रश्न :- एक समयकी ज्ञानकी पर्यायको कभी तो शास्त्रमें ज्ञेयरूप कहते हैं, कभी पर्याय है इसलिये हेय है ऐसा कहा जाता है और कभी उसे प्रगट करने हेतु उपादेय कहा गया है। ऐसे एक पर्याय सम्बन्धी अनेक प्रकार शास्त्रोंमें आते हैं, तो भेदज्ञान ज्योति प्रगट करने हेतु किस बातकी मुख्यता करें ? हेय-ज्ञेय-उपादेय कैसे करें ? कृपया समझायें।

समाधान :- अखंड स्वभावपर दृष्टि करनेसे जो पर्यायें प्रगट होती हैं वे आत्माका मूल स्वरूप नहीं है, इसलिये दृष्टि अपेक्षासे उन्हें हेय कहा जाता है। ज्ञानकी अपेक्षासे उन्हें जाननेयोग्य कहा जाता है; परन्तु जो अपूर्ण साधनाकी पर्यायें हैं वे बीचमें आये बिना नहीं रहती, वे ज्ञानमें जाननेयोग्य हैं और वे प्रगट करनेकी अपेक्षासे आदरणीय हैं। ज्ञान, दर्शनकी जो अपूर्ण पर्यायें हैं वे एक समयमें पूर्ण नहीं होती, चारित्र भी एकसाथ परिपूर्ण प्रगट नहीं होता, इसलिये उसे साधना करनी रहती है, स्वरूपमें लीनता करनी रहती है, इसलिये उन पर्यायोंको ज्ञान आदरणीय भी जानता है।

निश्चय-व्यवहारकी संधि जैसी है वैसी समझे तो साधनामें आगे बढ़ता है। दृष्टिमें एक ज्ञायकको मुख्य रखकर अपूर्ण-पूर्ण पर्यायको भी गौण किया जाता है। अपूर्ण-पूर्ण पर्याय जितना मैं नहीं हूँ, मैं तो अखंड ज्ञायक हूँ। केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हो तथापि वह पर्याय है। मैं तो अखंड एक द्रव्य हूँ। सम्यग्दर्शनसे लेकर जो भी निर्मल पर्यायें प्रगट होती हैं वे सब साधनाके बीचमें आती हैं, इसलिये वे प्रगट करनेकी अपेक्षा उपादेय हैं। साधना करते हुए केवलज्ञान पर्याय प्रगट होती है, उस अपेक्षासे वह उपादेय है; परन्तु दृष्टिकी अपेक्षासे उसे हेय कहा जाता है।

(**स्वानुभूतिदर्शन-२४६**)

❋

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न :- जिज्ञासु शुभभाव को हेय समझता है और शुभभाव आये बिना रहते भी नहीं; तो ऐसा किसप्रकार वह इन दोनों बातों को समझता है?

समाधान :- हाँ, जिज्ञासु ऐसा समझता है। उसे श्रद्धा है कि शुभभाव तो हेय हैं तथापि बीच में आये बिना नहीं रहते। शुभभावों के आने से श्रद्धा में भूल हो ऐसा नहीं है। अधिक भक्ति करता हो उसे व्यवहार का पक्ष हो गया है ऐसा नहीं है। जिज्ञासु अंतर में स्वयं जानता है; उसकी श्रद्धा में होता है कि गुरुने कहा है कि तेरा शुद्धात्मा जुदा है, शुभभाव तेरा स्वरूप नहीं है। यह उसने स्वयं भी निर्णय किया है, इसलिये उसकी श्रद्धा में भूल नहीं होती। **(स्वानुभूतिदर्शन-२४०)**

प्रश्न :- जिज्ञासु महिमा तो ऐसी ही करता है कि गुरुदेव ! आपने ही सब कुछ-सर्वस्व दिया है ?

समाधान :- गुरुदेव ! आप ही सर्वस्व हो; आपने ही हमें सब कुछ दिया है; आप यहाँ पधारे-आपने मार्ग बतलाया तो हम जागृत हुए; आपने हमें पुरुषार्थ करना सिखाया है; - तदनुसार सब विनय की भाषा बोलता है, किन्तु अंतर से समझता है कि करना तो मुझे है। गुरुदेव का परम परम उपकार है ऐसा वह समझता है। हमारी दिशा बदली हो तो आपने ही बदलायी है- ऐसा वह उपकारबुद्धि से कहता है, उसके शुभभाव में ऐसा ही आता है। **(स्वानुभूतिदर्शन-२४१)**

प्रश्न :- श्री 'समयसार' की ३८ वीं गाथा में अप्रतिहतभाव की बात आयी थी। पूज्य गुरुदेवश्री कई बार कहते थे कि-बहिनश्री के जातिस्मरणज्ञान में जोड़नी क्षायिक की बात आती थी। तो कृपा करके हमें समझायें कि जोड़नी क्षायिक सम्यक्त्व का अर्थ क्या है ? वह किसे प्रगट होता है ?

समाधान :- जोडनी क्षायिक तो उसे प्रगट होता है जिसे अप्रतिहत धारा होती है। शुद्धात्म-साधना की विशेष-विशेष पर्यायें जुड़ती जाएँ तो अप्रतिहत धारारूप जोड़नी क्षायिक प्रगट होता है.

मुमुक्षु :- अब भी स्पष्ट नहीं हुआ, इसलिये विशेष स्पष्टता करने की कृपा करें।

बहिनश्री :- वह क्षयोपशम (क्षयोपशम सम्यक्त्व) ऐसा अप्रतिहत होता है कि जो गिरता नहीं है। उसकी समस्त पर्यायें अप्रतिहतभाव से प्रगट होती हैं। जोड़नी क्षायिक में धारा ही ऐसी अप्रतिहतधारा से प्रगट होती है। **(स्वानुभूतिदर्शन-२४२)**

प्रश्न :- पात्र शिष्य के मुख्य लक्षण सम्बन्धी थोड़ा स्पष्टीकरण कीजिये।

समाधान :- पात्र शिष्य को अंतर से आत्मा की ही लगन लगी होती है कि मुझे एक चैतन्य ही चाहिये, अन्य कुछ नहीं चाहिये। उसके प्रत्येक कार्य में आत्मा का ही प्रयोजन होता है, अन्य सब प्रयोजन उसे गौण रहते हैं। एक आत्मा की मुख्यता सहित ही उसके सर्व कार्य होते हैं। शुभभाव के कार्यो में भी उसे एक आत्मा का प्रयोजन होता है, अन्य कोई बाह्य प्रयोजन नहीं रहता। शुभभाव में देव-शास्त्र-गुरु की प्रभावना कैसे हो वैसे भाव आते हैं और आत्मा का प्रयोजन साथ होता है, अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता। लौकिक प्रयोजन से अत्यन्त न्यारा होता है। उसे तो एक आत्मा की ही लगन लगी है। लौकिक का, बाह्य का या बड़प्पन का कोई प्रयोजन नहीं रहता।

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-२० पर)

२९५

बंबई, १९४७

यदि चित्तकी स्थिरता हुई हो तो ऐसे समयमें सत्पुरुषोंके गुणोंका चिंतन, उनके वचनोंका मनन, उसके चारित्रका कथन, कीर्तन, और प्रत्येक चेष्टाका पुनः पुनः निदिध्यासन हो सकता हो तो मनका निग्रह अवश्य हो सकता है; और मनको जीतनेकी एकदम सच्ची कसौटी यह है। ऐसा होनेसे ध्यान क्या है यह समझमें आयेगा। परंतु उदासीनभावसे चित्तस्थिरताके समय उसकी विशेषता मालूम पड़ेगी।

२९८

ववाणिया, कार्तिक सुदी ४, गुरु, १९४८

काल विषम आ गया है। सत्संगका योग नहीं है, और वीतरागता विशेष है, इसलिये कहीं भी चैन नहीं है, अर्थात् मन विश्रांति नहीं पाता। अनेक प्रकारकी विडंबना तो हमें नहीं है, तथापि निरंतर सत्संग नहीं है, यह बड़ी विडंबना है। लोकसंग नहीं रुचता।

३१३

बंबई, पौष सुदी ७, गुरु, १९४८

ज्ञानीके आत्माको देखते हैं और वैसे होते हैं।

आपकी स्थिति ध्यानमें है। आपकी इच्छा भी ध्यानमें है। आपने गुरुके अनुग्रहवाली जो बात लिखी है वह भी सच है। कर्मका उदय भोगना पड़ता है यह भी सच है। आप समय-समयपर अतिशय खेदको प्राप्त हो जाते हैं, यह भी जानते हैं। आपको वियोगका असह्य संताप रहता है यह भी जानते हैं। बहुत प्रकारसे सत्संगमें रहने योग्य हैं, ऐसा मानते हैं, तथापि अभी तो यों सहन करना योग्य माना है।

चाहे जैसे देशकालमें यथायोग्य रहना और यथायोग्य रहनेकी इच्छा ही किये जाना यह उपदेश है। आप अपने मनकी चिंता लिख भेजें तो भी हमें आपपर खेद नहीं होगा। ज्ञानी अन्यथा नहीं करते, ऐसा करना उन्हें नहीं सूझता, ऐसी स्थितिमें दूसरे उपायकी इच्छा भी न करें ऐसी विनती है।

कोई इस प्रकारका उदय है कि अपूर्व वीतरागताके होनेपर बी हम व्यपार संबंधी कुछ प्रवृत्ति कर सकते हैं, तथा खाने-पीने आदिकी अन्य प्रवृत्तियाँ भी बड़ी मुश्किलसे कर पाते हैं। मन कहीं भी विराम नहीं पाता, प्रायः यहाँ किसीके समागमकी वह इच्छा नहीं करता। कुछ लिखा नहीं जा सकता। अधिक परमार्थवाक्य कहनेकी इच्छा नहीं होती। किसीके द्वारा पूछे गये प्रश्नोंके उत्तर जानते हुए भी लिख नहीं सकते। चित्तका भी अधिक संग नहीं है, और आत्मा आत्मभावमें रहता है।

समय-समयपर अनन्तगुणविशिष्ट आत्मभाव बढ़ता हो ऐसी दशा रहती है, जिसे प्रायः भाँपने नहीं दिया जाता, अथवा भाँप सकनेवालेका प्रसंग नहीं है।

आत्माके विषयमें सहज स्मरणसे प्राप्त हुआ ज्ञान श्री वर्धमानमें था ऐसा मालूम होता है। पूर्ण वीतराग जैसा बोध हमें सहज ही याद आ जाता है, इसीलिये आपको और गोसलियाको लिखा था कि आप पदार्थको समझें। वैसा लिखनेमें दूसरा कोई हेतु न था।

(शेष अंश पृष्ठ संख्या-१९ पर)